P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-2) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भारतीय नाट्य परम्परा और हिन्दी नाटक

पूनम त्रिपाठी
रिसर्च स्कॉलर ,
हिन्दी विभाग,
ए0 पी0 एस0 यूनिवर्सिटी
रीवा, म0 प्र0, भारत

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय नाट्य परम्परा और हिन्दी नाटक में भारतीय नाट्यशास्त्र के नाटक परम्परा को बताया गया है कि वह किस तरह से क्रमबद्ध रूप में संस्कृत से हिन्दी में आया प्राचीन संस्कृत नाटक का स्वरूप क्या था और वह आधुनिक हिन्दी गद्य नाटक के रूप को कैसे धारण किया इसकी संक्षिप्त परिचय दिया गया है। संस्कृत आचार्यो के नाट्यशास्त्र में दिए गए नाटक के प्रमुख तत्व एवं उनके संचालन विधियों का इसमें प्रस्तुत किया गया है। नाटक की विषय वस्तु शिल्पविधानों में काल के अनुसार आये परिवर्तन तथा समाज में इसकी उपयोगिता को दर्शाया गया हैं।

मुख्य शब्द : नाट्यशास्त्र परम्परा, शिल्पविधान काल, नाटक, प्राचीन, आधुनिक।

प्रस्तावना

भारतीय नाट्यशास्त्र में नाटक की परम्परा प्राचीनतम है। भरतमुनि (चतुर्थ ई0 पू0 लगभग) कृत नाट्यशास्त्र में इसका विशद् वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त धनंजय कृत दशरूपक तथा विश्वनाथ कविराज विरचित साहित्य दर्पण में इसकी बहुमूल्य सामग्री मिलती है। धनंजय के नाट्यशास्त्र के बीसवें अध्याय दशरूप विधान (अ.20 पृ.1) को आधार मानकर अपने ग्रंथ का नाम ''दशरूपक'' दिया परंतु विद्वानों ने नाट्यशास्त्र को ही नाट्य विद्या का मौलिक प्राचीनतम् स्रोत माना है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र को पंचमवेद कहा है। नाट्यशास्त्र में वर्णित एक कथा से पता चलता है कि देवताओं की प्रार्थना पर ब्रम्हा ने समस्त मानवों के मनोरंजनार्थ नाट्यवेद की रचना की। उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर नाट्यवेद की सृष्टि की। इस पर श्लोक हैः–

''जाग्रह पाठयं ऋग्वेदांत सामभ्यों गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान रसमाथर्वणा दपि।।" (नाट्यशास्त्र 1/17–18 पृ0)

इस तरह से देखा जाता है कि इसकी विवेचना वैदिक युग में भी मिलती है और यह भारतीय नाट्य परंपरा संस्कृत से क्रमशः हिन्दी में आयी। परन्तु सामाजिक विविध विषयों के साथ इसका विस्तार हिन्दी गद्य में ही हुआ। वैदिक साहित्य से लौकिक साहित्य, लौकिक साहित्य के बाद पाली साहित्य, पाली के बाद प्रकृत साहित्य, प्रकृत के बाद अपभ्रंस साहित्य, अपभ्रंस के बाद हिन्दी में अन्य विधाओं के भॉति हिन्दी नाटक का आविर्भाव हुआ। नाटक की भाषा शैली पद्यात्मक, गीतात्मक से गद्यात्मक रूप में विकसित हुई। हिन्दी नाटक के संबंध में एक अंश–''हिन्दी और नाटक के संबंध में एक और विचित्र बात है कि हिन्दी नवयुग का उत्थान नाटक से ही हुआ।''[2] (प्रसाद की सम्पूर्ण कहानियाँ एवं निबंध पृ0 सं0– 449) गद्य विधा के जनक कहे जाने वाले भारतेन्दु जी जिस काल में अपनी प्रतिभा और परिश्रम से हिन्दी की उन्नति की उसमें नाटक विधा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्वानों का मानना है कि ''कला की सफलता वहाँ है जहाँ मनुष्य अपने को भूल कर तल्लीन हो जाये, वह किसी आदर्श के लिए न हो – केवल अपने लिए अपनी स्थिति रखती हों।'' काव्य की ऐसी क्षमता नाटक में है। नाटक में दृश्य, श्रव्य तथा कला की दृष्टि मूर्त और अमूर्त रूपों का उपयोग है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत निबंध भारतीय नाट्य परम्परा और हिन्दी नाटक के अध्ययन का मूल उद्देश्य–

1. अपनी नाट्य संस्कृति से पाठकों को अवगत कराना।
2. नाटक के भाषायी क्रम व साहित्य से पाठकों का परिचय कराना।
3. नाटक विधा का साहित्य में महत्व को बताना।
4. नाट्य परम्परा में हिन्दी नाटकों के विस्तार से अवगत कराना।
5. नाटक व नायक से अवगत कराना।

6. नाट्य कथा विस्तार में उपस्थित तत्व एवं संचालन की विधियों से अवगत कराना। भारतीय नाट्यशास्त्र में नाटक की परम्परा अत्यन्त प्राचीनतम है। भारतीय नाटक एवं नाट्य कला का क्रमिक विकास संस्कृत से हिन्दी में है। नाटक के संबंध में लोगों का कहना है कि उनके बीज वैदिक संवादों में मिलते है। वैदिक काल में भी अभिनय संभवतः बड़े–बड़े यज्ञों के अवसर पर होते रहे। वाल्मीकि कृत रामायण में भी नाटकों का उल्लेख है। ''बधूनाटक संघैश्च संयुक्तां सर्वतः पुरीम'' (बालकांड 5, 12)''[3] (जयशंकर प्रसाद के निबंध–'' नाटकों का आरंभ के आधारभूत'') संभवतः रामायण काल के नाटक संघ बहुत प्राचीन थे। भरत के ''नाट्यशास्त्र में अमृत मंथन और त्रिपुरदाह नाम के नाटकों का उल्लेख मिलता है। भाष्यकार पंतजति ने कंस–वध और बलि–वध नामक नाटकों का उल्लेख किया है। महाभारत में भी रंभाभिसार के अभिनय का विशद वर्णन मिलता है। इन प्राचीन नाटकों की कोई प्रतिलिपि नहीं मिलती। संभव है कि अन्य प्रचीन साहित्य की तरह ये सब नाटक नटो को कंठस्थ रहे होंगे। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार देवासुर–संग्राम के बाद इन्द्रध्वज के महोत्सव पर देवताओं के द्वारा नाटक का आंरभ हुआ। भरत ने नाट्य के साथ नृत्य का समावेश कैसे हुआ इसका उल्लेख किया है– ''प्रायेण सर्वलोकस्य नृतमिष्टं स्वभावतः'' (नाट्यशास्त्र पृ0 सं0– 4–271) वैदिक काल के बाद नृत्य में उल्लास और प्रमोद की पराकाष्ठा देखकर नाटकों में इसकी योजना की गई। आरंभ में नृत्य की योजना रंग–पूजा में देव स्तुति के साथ होती थी।

इस तरह से देखा जाता है कि नृत्य गीत की योजना ने प्राचीन काल में ही अभिनय को संपूर्ण बना दिया था। बौद्ध–काल में भी वह अच्छी तरह भारत भर में प्रचलित था। विनयपिटक में इसका उल्लेख है। अभिनवगुप्त ने गद्य–पद्य मिश्रित नाटकों के अतिरिक्त राग काव्य का भी उल्लेख किया है। (अभिनव भारती अध्याय–4) राघव विजय और मारीच वध नाम के राग काव्य उक्त और ककुभ राग में कदाचित अभिनय के साथ वाद्य ताल के अनुसार गाये जाते थे। ये प्राचीन राग–काव्य ही आजकल की भाषा में गीति–नाट्य कहे जाते है। भारतीय संस्कृत आचार्यो द्वारा नाटक ग्रंथ संबंधित सम्पूर्ण तथ्यों की विवेचना उनके नाट्य ग्रंथ में किया गया है। उनमें से (नाट्यशास्त्र की भारतीय परंपरा और दशरूपक के आधाभूत) संक्षिप्त रूप से रूपविधान और नाटक के तत्वों की विवेचना किया गया है। जो निम्नप्रकार से है। नाट्शास्त्र के बीसवें अध्याय को दशरूप विधान कहा गया है जिसके आधार पर धनंजय ने अपने ग्रंथ का नाम दशरूपक दिया। वे दशरूप विधान है– नाटक, प्रकरण, अंक (उत्सष्टिकाकर) व्योयोग, भाण समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम और ईशामृग इसमें नाटिका ग्यारहवें रूपक की चर्चा हुई परंतु उसे स्वतंत्र रूपक नहीं माना गया। प्रस्तुत निबंध में मैंने नाटक व उनके तत्वों की विवेचना को प्रस्तुत किया गया है जो निम्नलिखित है :–

नाटक

''नाटक वह विधा है, जिसमें संवादो के माध्यम से कथा आगे बढ़ती है, तथा जिसे रंगमंच पर अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है''। काव्य में नाटक का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इसमें कला पक्ष के माध्यम से लोकोत्तर चमत्कार और आदर्श–दृश्य तथा श्रव्य, मुर्त्त और अमूर्त्त इत्यादि सब साधनों से वह मानसिक संसार को विकास देता है और उसके पास साधन भी प्रचुर परिमाण में है। जैसे शिल्प, संगीत, चित्र, कविता, आहार्य, भाव और अंग भंगी से अभिनय पूर्ण होता है। अतः इसके विषय में कहा गया है कि ''काव्येषु नाटकं रम्यं।'' चौथी शताब्दी के भरतमुति द्वारा रचित ''नाट्यशास्त्र'' में नाटक के तीन तत्व बताए गए है–

(1). वस्तु (2). नेता (3). रस।

कथावस्तु (वस्तु)

आचार्यों ने कथावस्तु के विकास को जिन पाँच भागों में विभक्त किया है, उन्हें कार्यावस्था कहते है। नाटक में पाँच कार्यावस्थाएँ होती है :–

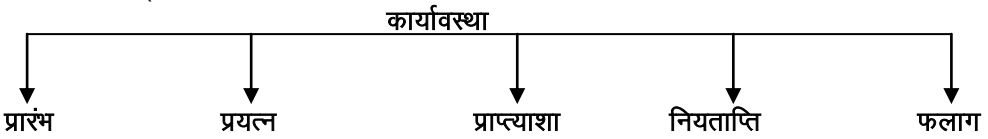

प्रारंभ

दशरूपाकार धनंन्जय के अनुसार–''औत्सुक्य मात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे'' अर्थात् कथावस्तु का वह भाग प्रारंभ नामक कार्यावस्था है, जहाँ नाटय के हृदय में फल प्राप्ति की तीव्र इच्छा उदित होती है।

प्रयत्न

धनंजय ने अपने ग्रंथ ''दशरूपक'' में प्रयत्न के विषय में परिभाषित किया है। ''प्रयत्नस्तु तत् प्राप्तौ व्यापारों इति त्वरान्वितः।'' अर्थात फल प्राप्ति में आए व्यवधान को हटाने हेतु किये गए प्रयत्न हो वहाँ प्रयत्न कार्यावस्था होती है।

प्राप्त्याशा

धनंजय के अनुसार–''उपायापाय शंकाभ्या प्राप्त्याशा प्राप्ति सम्भव'' अर्थात जहॉ फल प्राप्ति की सम्भावना अवरोधों के कारण धूमिल पड़ जाती है, किन्तु प्रयत्न से अवरोध हटते दिखाई पड़ते है, वहाँ प्राप्त्याशा कार्यावस्था होती है।

नियताप्ति

धनंजय के ''दशरूपक के अनुसार– "अपनयाभावतः प्राप्तिः नियताप्तिः सुनिश्चितः'' अर्थात् विघ्न निवारण के उपरांत फल प्राप्ति का निश्चय हो वहॉ नियताप्ति कार्यावस्था होती है।

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-2) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

फलागम

धनंन्जय के अनुसार – ''जहाँ समग्र फलसम्पत्तिः फल योगो यथोचितः'' अर्थात् जहॉ इच्छित फल की प्राप्ति हो वहॉ फलागम कार्यावस्था होती है।

नाटक कथावस्तु के प्रयोजन (उद्देश्य) सिद्धि में सहायक सूचक गतिविधि का अर्थ प्रकृति कहा गया है। अर्थ प्रकृतियों की संख्या पॉच बतायी गई है।

अर्थ प्रकृति

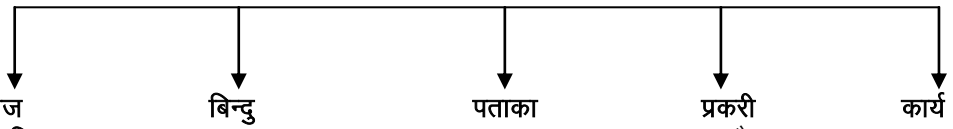

बीज अर्थ प्रकृति

''स्तकोदिष्ट कार्य साधकः'' अर्थात् थोड़े से शब्दों में कहे गए फल को विकास की ओर ले जाने वाले साधन को ''बीज'' कहा गया है।

बिन्दु अर्थ प्रकृति

''अवन्तरार्थ विच्छेदे बिन्दुर्छेद कारण'' अर्थात् जब मुख्य कथा के प्रभाव के कारण अवान्तर कथा क्षीण होने लगती है, तब उस क्षीण होती हुई कथा को पुनः जीवित करने वाले फल का हेतु बिन्दु कहा गया है।

पताका अर्थ प्रकृति

'दूरं यदनुवर्तते प्रासंगिका सा पताका'' अर्थात मुख्य कथा का दूर तक साथ देने वाली प्रासंगिक कथा ही ''पताका'' कही गई है।

प्रकरी अर्थ प्रकृति

''प्रासंगिकं प्रदेशस्यं चरितं प्रकरी भवेत्'' अर्थात् प्रकरी वह कथा है, जो मुख्य कथा में बहुत कम अंश में व्याप्त रहती है।

कार्य अर्थ प्रकृति

''अपेक्षितं तु यत्साध्यमारम्भो यत् निबंधनः।
समापनं तु यत सिद्धये तत्कार्यम् इति सम्मतम्।।''

'' अर्थात् जिसकी सिद्धि हेतु सम्पूर्ण साम्रगी उपाय एकत्र किए जाए वही कार्य है।

नाट्य संधि

कार्यावस्था एवं अर्थप्रकृति के मेल को नाट्य संधि कहा जाता है। धनंजय कृत दशरूपक के अनुसार–'' अन्तरैकार्य संबंधः सन्धिरेकान्वयः विधिः '' अर्थात् कथावस्तु के अंगों को अनिवत करने वाली संधि है। नाट्य संधियॉ पॉच होती है।

मुख (ख) प्रतिमुख (ग) गर्भ (घ) विमर्श (ड.) निर्वहण

कार्यावस्थाओं एवं अर्थ प्रकृतियों के मेल से बनी संधियाँ

कार्यावस्था	अर्थप्रकृति	संधि
1. प्रारंभ	बीज	मुख
2. प्रयत्न	बिन्दु	प्रतिमुख
3. प्राप्त्याशा	पताका	गर्भ
4. नियताप्ति	प्रकरी	विमर्श
5. फलागम	कार्य	निर्वहण

नायक (नेता)

नाटक का प्रमुख पात्र ही नायक होता है। वही अन्तिम फल का भोक्ता होता है, तथा वहीं कथा का केन्द्रीय पात्र होता है। जो प्रमुख पात्र कथा वस्तु को प्रारंभ से लेकर अंत तक ले जाता है, वहीं नाटक का नायक कहा जाता है। नायक चार प्रकार के होते है। (क) धीरोदात्त (ख) धीर ललित (ग) धीर प्रशान्त (घ) धीरोद्धत।

धीरोदात्त

उदान्त गुणों से युक्त नायक 'धीरोदात्त नायक होता है, जैसे– राम

धीर ललित

श्रृंगार रस प्रधान नाटकों में धीर ललित नायक होता है, जैसे– दुष्यंत।

धीर प्रशान्त

आत्म संतोषी, विनम्र, धर्मपरायण, शांत स्वभाव का नायक धीर प्रशांत नायक होता है, जैसे– युधिष्ठिर।

धीरोद्धत नायक

कुटिल, नीतिज्ञ, कपटी, प्रचण्ड व्यक्तित्व वाला नायक धीरोद्धत कोटी का नायक होता है। जैसे– रावण

नाटक में बिदूषक और पीठमर्द

नाटक में हास्य रस की सृष्टि करने वाला पात्र ''बिदूषक'' कहलाता है। वह प्रायः ब्रम्हण, भोजनभट्ट होता है, और नायक का सहायक होता है। नाटक में नायक के फल प्राप्ति में सहायता करने वाला पात्र पीठमर्द कहलाता है। रामकथा में ''सुग्रीव'' पीठमर्द है।

नाटक में रस

नाटक में वीर रस, श्रृंगार रस और करूण रस में से कोई एक रस प्रधान हो सकता है।

नाटक के लक्षण

आचार्य विश्वनाथ कृत साहित्य दर्पण के अनुसार–''नाटक की कथा लोक प्रसिद्ध हो उसमें पांच नाट्य संधियों का समावेश हो, पाँच से लेकर दस अंक हो, नायक लोक प्रसिद्ध धीरोदात्त चरित्र वाला देवता या राजर्षि हो तथा उसमें वीर श्रृंगार और करूण में से कोई एक रस प्रधान हो।''

नाटक संचालन में अर्थोपक्षेपक

नाटक के कथानक का कुछ अंश रंगमंच पर अभिनय के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, जबकि कुछ अंश ऐसा होता है जिसकी सूचना पात्रों के वार्तालाप द्वारा प्रदान की जाती है। जो कथावस्तु रंगमंच पर अभिनीत की जाती है उसे दृश्य कथानक कहते है, और कथा वस्तु का जो अंश सूचित किया जाता है, उसे ''सूच्य कथानक'' कहते है। सूच्य कथानक को जिन विधियों से सूचित किया जाता है, उन्हें ''अर्थोपक्षेपक'' कहा जाता है। अर्थोपक्षेपको की संख्या पाँच मानी गई।

अर्थोपक्षेपक

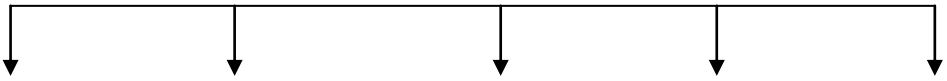

विष्कम्भक

विष्कम्भक प्रथम अंकक्षेप है। इसका प्रयोग नाटक के किसी अंक के प्रारंभ में किया जाता है, तथा इसमें अतीत या भविष्य में घटित होने वाली कथावस्था की सूचना दी जाती है। यह सूचना मध्य श्रेणी के पात्र परस्परिक वर्त्तालाप के माध्यम से देते हैं।कभी–कभी मध्यम वर्ग के पात्रों के साथ–साथ अधम वर्ग के पात्र भी वार्त्तालाप से कोई सूचना प्रदान करते हैं।

प्रवेशक

प्रवेशक पाँच अर्थोक्षेपकों में से दूसरा है। यह नाटक के दो अंको के बीच होता है, अतः यह प्रथम अंक के प्रारंभ में नहीं हो सकता। प्रवेशक में अधम वर्ग के पात्र प्रकृत भाषा में वार्त्तालाप करते हुए कथांश की सूचना देते है। यह सूचना अतीत या भावी घटना की हो सकती है।

चूलिका

जब नेपथ्य से ही पात्रों द्वारा कोई सूचना दी जाती है तब उस अर्थोपक्षेपक को चूलिका कहा जाता है। इसमें रंगमंच पर आकर कोई पात्र सूचना नहीं देता अपितु परदे के पीछे से नेपथ्य में खड़ा होकर दर्शकों को सूचित कर देता है। सूचना देने के इस ढंग को चूलिका कहते है।

अंकास्य

अंकास्य वह अर्थोपक्षेपक है, जिसमें किसी अंक के अंत में अभिनय करने वाले पात्र ही आगामी अंग की घटना की सूचना दे देते है और इस प्रकार एक अंक की कथा अगले अंक की कथा से जुड़ जाती है।

अंकावतार

''अंकावतार'' सूच्य कथानक को प्रस्तुत करने का एक साधन है, जो पहले अंक के अंत में पात्र अगले अंक की कथा को सूचित करते है और बिना कथा प्रवाह को रोके हुए अगले अंक का अभिनय चलता रहता है, वहां अंकावतार नामक अर्थोपक्षेपक माना गया है।

नाटक में भरत वाक्य

संस्कृत नाटक सुखान्त होते थे जिनमें नायक–नायिका का मिलन अंत में दिखाकर नायक को फल प्राप्ति या लक्ष्य प्राप्ति हो जाती थी। इस अवसर पर कोई देव पुरूष, ऋषि अथवा गुरूजन आकर उनदोनों की कल्याण कामना करता हुआ जो आर्शीवचन बोलता था, वहीं ''भरत वाक्य'' कहा जाता था।

नाटक में ''सूत्रधार''

कठपुतलियों के खेल में सूत्र (धागे) की धारण करने वाला व्यक्ति परदे के पीछे रहकर उन धागों की सहायता से कठपुतलियों को नचाता है इसलिए उसे ''सुत्रधार'' कहा जाता है। सूत्रधार ही नाटक का कर्त्ताधर्ता होता है तथा उसी के निर्देशन में नाटक के सभी क्रियाकलाप सम्पन्न होते है। फिल्मों में जो काम निर्देशक का है, नाटक में वहीं काम नाट्य निर्देशक या सूत्रधार का है। इस तरह से भारतीय संस्कृत के आचार्यो द्वारा लिखे नाट्यग्रंथ में नाटक संबंधित सम्पूर्ण विवेचना मिलती है, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय नाट्य परंपरा एवं नाटक संबंधित तथ्य प्राचीनतम है। संस्कृत आचार्यो द्वारा रचित कुछ प्रमुख नाटक एवं उनके रचनाकार –

भाष (प्रथम द्वितीय ई0 पू0 लगभग)

स्वप्नवासदत्तम्, प्रतिज्ञाजौगंधरायणम्, दरिद्रचारूचादत्त, अविमारक, अभिषेक, प्रतिमा, उरूभंग, दूतवाक्यम् आदि।

कालीदास (तीसरी,चौथी शताब्दी)

मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोवंशीयम् अभिज्ञानशाकुन्तलम् आदिं

हर्ष (छठी शताब्दी)

मालतीमाध्वम्, महावीरचरितम् उत्तररामचरितम् आदि।

शुद्रक का मृच्छकटिकम् एवं विशाखदंत का मुद्राराक्षस आदि संस्कृत के आचार्यो द्वारा रचित ये कुछ प्रमुख नाटक है। संस्कृत आचार्यो के बाद आधुनिक काल में भी संस्कृत नाटक के नाटककार मनमोहन द्वारा रचित नाटक अर्जुन प्रतीज्ञा, पदपल्वम् दिव्यजयदेवम् आदि नाटकों का उल्लेख हिन्दी साहित्य के इतिहास में मिलते है। इन संस्कृत नाटको में भारतीय जीवन दृष्टि का एक बड़ा विलक्षण और प्रभावशानली रूप मिलता है। संस्कृत नाटको में मनुष्य अपने स्वभाव स्वधर्म और पुरूषार्थ के अनुसार जीवन की विभिन्न स्थितियों से गुजरता हुआ अपने निर्धारित कर्त्तव्यों को पूरा करते दिखाया गया है। इसमें यथार्थवादी प्रतिबिम्ब नहीं, बल्कि एक गहरे नैतिक और सौंदर्यमूलक विवेक से मनुष्य के कार्य भाव जीवन संबंधित विभिन्न अवस्थाओं को कलात्मक कल्पनाशीलता से दिखाया गया है जिससे दर्शक को रसात्मक अनुभव आनन्द प्राप्त हो सके। नाटक अभिनय परम्परा में यथार्थ के अनुरूप नही, बल्कि यथार्थ को दिखाने का प्रयास किया जाता है। इस तरह से प्राचीन भारत में संस्कृत नाटकों की पराकाष्ठा चरम सीमा पर थी परन्तु मध्ययुगीन भारत में विदेशियों के आगमन के साथ ही इसका विघटन शुरू हुआ और दसवीं शताब्दी आते–आते विघटित हो गया।

हिन्दी साहित्य के इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि आधुनिक काल में भी संस्कृत नाटकों की रचना हुई तथा संस्कृत नाटकों का हिन्दी में अनुवाद हुआ। संस्कृत भाषाओं की जननी है इसे नकारा नहीं जा सकता, परन्तु नाटक विविध विषयों के साथ हिन्दी गद्य में ही दिखाई देता है। हिन्दी गद्य साहित्य का प्रारम्भ भारतेन्दु से ही मानना चाहिए, जिसमें नाटकों का प्रथम स्थान है क्योकि इसमें मूर्त अमूर्त दोनों रूपों में अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता है। इस विधा की ओर पढ़े–अनपढ़े सभी आकर्षित हुए और इसके माध्यम से

समाज के प्रत्येक समस्याओं को सुलझाने में मदद मिली क्योंकि हिन्दी गद्य नाटकों में अपनी बातों को साधारण रूप में बोलने और समझने की क्षमता है। हिन्दी गद्य के जनक कहे जाने वाले ''भारतेन्दु जी ने संस्कृत और अंग्रेजी नाट्यग्रंथ के आधार पर हिन्दी में नाट्यग्रंथ ''नाटक'' नाम से किया। इस ग्रंथ में उन्होने नाट्यग्रंथ का देश काल और अवस्था के अनुसार परिवर्तित दशा के आलोक में अध्ययन प्रस्तुत किया है। प्राचीन आचार्यो का नियम उन्होंने ग्रहण किया है, परंतु अंध भक्ति के साथ नहीं। अर्थात् उन्होंने परिवर्तित समय के अनुसार पाश्चात्य नाट्यशास्त्र का भी उपयोग किया। उन्होंने बहुत से अप्रयुक्त प्राचीन नियम तोड़ने और प्राचीन नियमों के अशास्त्रीय प्रचलित अर्थ को ग्रहण करने में कोई हानि नहीं समझी। ''संस्कृत में भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' का जो स्थान है वही स्थान हिन्दी में भारतेन्दु द्वारा रचित नाट्यग्रंथ 'नाटक' का है।''[4] (हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ–199– शुक्ल जी)

इस तरह से हिन्दी ने साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारतेन्दु जी अपने समय के दर्शकों की रूचि को परिष्कृत करने का प्रयास किया है पारसी थियेटर की व्यवसायिक मनोवृत्ति से उत्पन्न हीन रूचियों, दृश्य एवं गीतों का प्रबल विरोध किया। उन्होंने संस्कृत नाट्यकला के साथ–साथ पाश्चात्य नाट्यकला का समन्वय करके हिन्दी नाट्य कला को नवीन दिशा की ओर अग्रसर करने का स्तुत्य प्रयास किया। प्रारंभिक हिन्दी नाटक के विषय में यद्यपि डॉ. दशरथ ओझा ने अपने शोध प्रबंध कवि अब्दुल रहमान लिखित 'संदेशरासक' के आधार पर हिन्दी नाटक का प्रारम्भ तेरहवीं शताब्दी को मानते हुए यह निर्णय व्यक्त किया है– ''हमारी सम्मति में यह रासक पूर्णतया विकसित नाटकों के प्रारंभिक काल का वह रूप है जिसमें श्रव्यकाव्य अभिनय की सहायता से दृश्यकाव्य में परिणित हो रहे है। बहुरूपियों से प्रदर्शन होने का उल्लेख इस बात का प्रमाण है।''[5] परन्तु यदि हिन्दी साहित्य के अध्ययन पर विचार किया जाए तो हिन्दी नाट्य सहित्य का आरंभ उन्नसवीं शताब्दी भारतेन्दु से ही मानना उचित होगा। उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व की जो नाट्य सामग्री उपलब्ध होती है उसके आधार पर विद्यापति प्रथम नाट्यकार माने जा सकते है, क्योंकि उनके दो नाटक 'रूक्मणि हरण' और 'पराजित हरण प्रसिद्ध है। इन नाटकों का रचना काल चौदहवीं शताब्दी है। चौदहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक विद्यापति के दोनों नाटकों के अतिरिक्त केशवदास का विज्ञानगीता, हृदयराम का हनुमान्नाटक, बनारसीदास का समयसार, यशवन्त द्वारा अनुदित प्रबोध चन्द्रोदय, नेवाज कवि का शकुन्तला नाटक, देव का देवमाया प्रपंच, आलम का मधवानल कामकन्दला, महाराजा विश्वनाथ सिंह का आनंद रधुनन्दन, मंसाराम का रधुनाथ रूपक, कृष्णा शर्मा का रासलिला विहार, श्रीराम का जानकी रामचरित आदि कुछ नाट्क कृतियाँ उपलब्ध होती है, जिसे विद्वानों ने नाटक न मानकर पद्यात्मक वर्णन कहा है क्योंकि नाटक अभिनय का इसमें कोइ अभ्यास नहीं किया गया है। वस्तुतः विशुद्ध नाट्य नीति का ध्यान रखकर हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक नाटक नहुष सन् 1857 मे भारतेन्दु के पिता गोपाल चन्द्र द्वारा लिखा गया लेकिन वह भी ब्रजभाषा मे लिखा गया था। अतः वास्तविक रूप से हिन्दी नाट्य साहित्य के जन्मदाता होने का श्रेय भारतेन्दु को जाता है। उन्होने 1868 ई० मे संस्कृत के विद्यासुन्दर का अनुवाद प्रकाशित करवाया (आचार्य राम चंद्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास के खण्ड 'अ' आधुनिक गद्य कव्य और उसका विकास पृष्ठ 198–199 के आधारभुत) हिन्दी नाटकों के विकास की परम्परा का अध्ययन करने हेतु विद्वानों ने उसे निम्नलिखित खण्डों मे विभाजित किया हैः–

1. भारतेन्दु युग (सन् 1857 ई० से 1900 ई० तक)
2. प्रसाद युग (सन् 1900 ई० से 1950 ई० तक)
3. प्रसादोत्तर युग (1950 ई० के उपरांत)

इन युगीन नाटकों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारतेन्दु युग में मौलिक और अनुदित दोनों प्रकार के नाटकों की धूम रही। भारतेन्दु युगीन नाटककारों ने एक ओर दूसरी भाषाओं के श्रेष्ठ रचनाओं को हिन्दी मे अनुदित किया तो दूसरी ओर विविध विषयों के साथ हिन्दी में मौलिक नाटक लिखा। भारतेन्दु जी के अनुदित नाटक विद्यासुन्दर रत्नावली, कर्पूर मंजरी, दुर्लभ बन्धु आदि है तथा वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति, विषस्य विषमौषधम्, भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी आदि है। भारतेन्दु युगीन प्रमुख नाटककार लाला श्रीनिवास दास राधाकृष्ण दास, बालकृष्ण भट, राधाचरण गोस्वामी, गोपलराम गहमरी, किशोरी लाल आदि नाट्यकारो ने विभिन्न सामाजिक समस्याओ के साथ इतिहास ग्रंथो को भी नाटक का विषय बनाया।

प्रसाद युगीन नाटक में भारतेन्दु युगीन नाटकों को पोषण मिला भारतेन्दु जी ने हिन्दी नाटकों को भूमि प्रदान किया जिसे जयशंकर प्रसाद द्वारा पल्लवित किया गया। प्रसाद जी के समय तक हिन्दी रंगमंच का पूर्ण विकास नहीं हो सका था फलतः उनके अभिनेता में कमी आई, परन्तु बाद में उनके द्वारा रचित नाटक अभिनेता के दृष्टि से अच्छी हुई। प्रसिद्ध समालोचक डॉ गोपाल राय के अनुसार– 'प्रसाद जी की कठिनाई यह थी कि वे जिस प्रकार के नाटक लिखना चाहते थे उनके अनुसार रंगमंच हिन्दी में नहीं था।' प्रसाद जी के नाटकों में भारतीय संस्कृति, जातीय गौरव एवं राष्ट्रीयता के गौरवपूर्ण चित्र अंकित है। नाट्य शिल्प की दृष्टि से उनके नाटक बेजोड़ है। इनके प्रमुख नाटक स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, आजातशत्रु, ध्रुवस्वामिनी, जनमेजय का नागयज्ञ आदि प्रसादयुगीन प्रमुख नाटकारों में हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मी नारायण मिश्र, सेठ गोविंद दास, उपेन्द्रनाथ अश्क, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, आदि जिन्होंने समाज सुधार की प्रवृत्तियों को आधार मानकर रचना की गयी। बाल–विवाह, अनमेल विवाह, छुआछूत, वर्ण व्यवस्था, नारी स्वतंत्रता, धार्मिक अंधविश्वास, जैसी अनेक समस्याओं का चित्रण तत्कालीन नाटकों में हुआ। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रसाद युगीन नाटक, हिन्दी नाटक को प्रौढ़ता की ओर ले जाने वाला काल सिद्ध हुआ।

प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक जीवन के यथार्थ से अधिक जुड़े हुए है तथा इनमें रंगमंचियता एवं अभिनेयता का विशेष ध्यान दिया गया हैं। इस काल में भी नाटकों की विषय वस्तु इतिहास पुराण के साथ–साथ समसामयिक जीवन से ली गयी तथापि अब विषय वस्तु एवं शिल्प में

बदलाव नजर आने लगा। देश मे स्वतत्रंता के पश्चात् नई चेतना का विकास हुआ। स्वतंत्रता के बाद जनमानस ने जो अपेक्षाएं की थी वे पूरी नहीं हो सकी, परिणाम स्वरूप सर्वत्र अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न हुई जिसे नाटकों में प्रमुखता से लिया गया। इस युग के प्रमुख नाटककार विष्णुप्रभाकर, जगदीशचन्द्र माथुर, मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण लाल, धर्मवीर भारती आदि इस युग के सशक्त नाटककार मोहन राकेश को माना गया है। यद्यपि उन्होंने केवल तीन ही नाटक–आषाढ़ का एक दिन, लहरों का राजहंस, आधे–अधूरे लिखे तथापि उनके नाटक हिन्दी नाटको में अपना विशिष्ट स्थान रखते है। इस तरह से हिन्दी नाटक के विषय में समग्ररूप से कहा जा सकता है कि इस काल के नाटककारों ने नवीन विषयों को लेकर नाटकों की रचना की है तथा इनके विषय वस्तु समकालीन जीवन के अधिक निकट है और हिन्दी नाटकों की विकास यात्रा आगे भी जारी है।

सुझाव

नाट्य कला हमारी भारतीय सांस्कृतिक धरोहर है। इसके समृद्धि की ओर हमें ध्यान देना चाहिए क्योंकि यह काव्य में अपनी विशिष्ट स्थान रखता है। नाटक दृश्य, श्रव्य, मूर्त्त, अमूर्त्त, सभी साधनों से मानसिक संसार को विकास देता है। इसके अंदर शिल्प नृत्य संगीत चित्र, कविता, आहार्य, भाव आदि की अभिनय क्षमता है जिसके माध्यम से शिक्षित अशिक्षित सभी आकर्षित होते है। नाटक काव्य प्रेयसी के भांति है, जो सामाजिक जटिल से जटिल समस्याओं को मनोरंजन के साथ समाधान करते दिखाई देता है। अतः हमें इसकी महत्ता समझ समृद्ध बनाने की कोशिश करनी चाहिए।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः भारतीय नाट्य परम्परा और हिन्दी नाटक के उपरोक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि यह प्रचीन संस्कृत साहित्य से क्रमबद्ध परिवर्तित रूप से हिन्दी गद्य में आया नवीन परिवेश नवीन भावबोध एवं नवीन मान्यताओं ने नाटक की विषय वस्तु को भी बदल डाला। नाटकों ने पुरानी लीक छोड़कर नवीन मार्ग ग्रहण किया। विषय वस्तु एवं शिल्प दोनों में भी बदलाव आए। हिन्दी नाटक के विषय में डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल कहते है कि– 'यह नाटक किसी एक परम्परा का नहीं है और न ही यह किसी बासी रंग पद्धति का हैंग ओवर है। हिन्दी का नया नाटक अपने सही अर्थो में प्रयोग है जिसने नाटककार तथा रंगकर्मी को एक विशाल और अपूर्व कर्म क्षेत्र प्रदान किया है।'[6] (प्रतियोगिता साहित्य सीरीज पृ० 322 इस तरह से देखा जाता है कि नाटक मानवीय जीवन की विसंगतियों, सामाजिक समस्याओं से लोगों को अवगत कराने तथा इन समस्याओं के उन्मूलन का सशक्त माध्यम है क्योंकि यह अपने प्रयोगधर्मिता के बल पर शिक्षित अशिक्षित सभी को अपनी ओर आकर्षित करता है। यद्यपि टी० वी० सिनेमा में हिन्दी नाटकों की रंगमंचीयता को प्रभावित किया है। दर्शक रंगमंच पर अभिनीत किये जाने वाले नाटको की ओर कम आकर्षित हो रहे है तथापि आज का हिन्दी नाटक पूर्णतः भारतीय नाट्य शास्त्र से जुड़ा हुआ है और अपनी प्रगति पथ पर विविध विषयों के साथ अग्रसर दिखाई दे रहा है।

अंत टिप्पणी

1. *नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक लेखक– हजारी प्रसाद द्विवेदी और पृथ्वीनाथ द्विवेदी। राजकमल प्रकाशन ISBN- 13:9788126705832.*
2. *हिन्दी साहिन्य का इतिहासः– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रभात प्रकाशन ISBN- 9789384344412.*
3. *प्रसाद की सम्पूर्ण कहानियॉ एवं निबंध– सम्पादन एवं भूमिका डॉ० सत्यप्रकाश मिश्र– प्रोफेसर हिन्दी विभाग इलाहाबाद।*
4. *डॉ० अशोक तिवारी– प्रतियोगिता साहित्य सीरीज संशोधित संस्करण– 2012 ई० प्रकाशन किताब घर।*
5. *नाटक एवं अन्य गद्य विधा– इग्नू मानविकी विद्यापिठ।*
6. *नाटकों का आरंभ– निबंध जयशंकर प्रसाद निबंध संग्रह पृ०– 503*
7. *'रंगमंच' प्रसाद के निबंध। रंगमंच पृ– 507*